ISSN: 2395-4965
Regd. No. 1305/2014-2015

Asian Journal of Advance Studies

An International Peer-Reviewed Refereed Research Journal for Higher Education. A Multidisciplinary Research Journal for All

Quarterly Journal

Vol. VIII, No. 3
July - September, 2022

Editor- in- Chief

Dr. Anil Kumar
Faculty of Law
Banaras Hindu University
Varanasi

Asian Journal of Advance Studies
Vol. VIII, No. 3 July - September, 2022

U.G.C. Approved Journal Sr. No. 48654

Asian Journal of Advance Studies

An International Research Refereed Journal Related to Higher Education
A Multidisciplinary Research Journal for All

Vol. VIII, No. 4, July-September, 2022, ISSN 2395-4965

Contents

➲ कमलेश्वर के उपन्यासों में जीवन संघर्ष के विविध आयाम	*डॉ. कृष्णकान्त प्रसाद* *रजनीश कुमार भाटिया*	1-5
➲ हिन्दू संस्कृति के सामाजिक तत्त्व	*राकेश चन्द्र गुणवन्त*	6-11
➲ मन्नू भण्डारी की कहानियों में आधुनिक चेतना	प्रियंका यादव	12-15

हिन्दू संस्कृति के सामाजिक तत्त्व

*राकेश चन्द्र गुणवन्त**

संस्कृति शब्द का अर्थ बड़ा अनिश्चित है। नर–विज्ञान में संस्कृति का अर्थ "समस्त सीखा हुआ व्यवहार" होता है, अर्थात् वे सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थ में संस्कृति शब्द परम्परा का पर्याय है।

'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम् उपसर्ग, कृ धातु एवं क्तिन प्रत्यय से हुई है'–

सम् + कृ + क्तिन = संस्कृति

संस्कृति की इस व्युत्पत्ति की शाब्दिक ध्वनि होती है– "भली भांति किया गया विभूषित व अलंकृत कार्य। संस्कृति को अंग्रजी में Culture कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'कोलरे' शब्द से मानी जाती है जो कि मध्यकाल में खेती–बाड़ी के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता था। बाद में यह सांस्कृतिक सन्दर्भों के लिए प्रयुक्त होने लगा।"

प्रो. उमेश चन्द्र दूबे के अनुसार, "धर्म, दर्शन, काव्य, कला, और समाज, सभी मिलकर किसी संस्कृति की आत्मा, मन और देह की गठित करते हैं। संस्कृति से अभिप्राय मनोमय जीवन का अनुशीलन है, जिसके दो पहलू हैं। पहले में प्रकृति के अनुभवात्मक उद्देश्यों की प्रधानता होती है जिसमें इन्द्रियों, संवेदनाओं और आवेगों की स्थिति होती है दूसरे में प्रकृति के बाह्य उद्देश्य की प्रधानता रहती है अर्थात् इसका सम्बन्ध कर्म करने वाले अंगों और कर्म क्षेत्र से होता है।"[1]

संस्कृति नैतिकता से सीधे तौर पर सम्बन्धित है। वाचस्पति गैरोला इस तथ्य पर जोर देते हुए लिखते हैं– "पढ़ा लिखा और कलाविद् व्यक्ति भी असंस्कृत हो सकता है और अनपढ़ एवं कलाशून्य या कलाहीन व्यक्ति भी संस्कृत हो सकता है। विद्या–सम्पन्न, कला मर्मज्ञ व्यक्ति यदि नैतिकता से हीन या रहित है तो, वह संस्कृत नहीं है। इसके विपरीत स्वानुभूत और लोक–व्यवहार के द्वारा अर्जित नैतिक मनोबल वाला अनपढ़ व्यक्ति भी संस्कृत हो सकता है।"[2]

हिन्दू संस्कृति

मानव–जीवन के अनेक पहलुओं का जितना विविध व व्यापक चित्र हिन्दुओं साहित्य में मिल सकता है, वैसा किसी दूसरी जाति या धर्म के साहित्य में नहीं। 'हिन्दू' शब्द को विदेशियों की देन, 'गुलाम' शब्द का पर्याय, असंस्कृत शब्द, अत्यन्त अर्वाचीन शब्द एवं आर्य गौरव का अपमानसूचक शब्द सिद्ध करने की चेष्टाएँ की गयीं हैं।

श्री माधवाचार्य शास्त्री का अभिमत इसके विपरीत है। 'कल्याण' के हिन्दू–संस्कृति अंक में अपने लेख 'हिन्दू कौन' में वे लिखते हैं–

"यदि सचमुच 'हिन्दू' शब्द विजेता यवनों की ओर से प्रदत्त गुलामी की लानत का संसूचक होता तो महाराणा प्रताप–जैसे हिन्दुत्व के प्रबल प्रतीक अपने–आपको 'हिन्दू–पति' उपाधि से गौरवान्वित न समझते। छत्रपति महाराज शिवाजी के दरबारी कविभूषण भूषण उनको– 'राखी हिन्दुवानी' 'हिन्दुवान को तिलक राख्यो– हिन्दुनकी चोटी... राखी' शब्दोंमें स्मरण न करते; गुरु गोविन्द सिंह स्वयं अपनी कविता में– 'जगै

***(शोधछात्र) संस्कृत विभाग, मानविकी विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्दवानी**

धर्म हिन्दू, सभी भण्ड भाजैं' कहकर 'हिन्दू' शब्द को सम्मान न देते! 'मेरुतन्त्र', 'कालिकापुराण' आदि ग्रन्थोंके अतिरिक्त पारसियों की प्रसिद्ध पुस्तक 'शातीर' में भी 'हिन्दू' शब्द का सुस्पष्ट उल्लेख विद्यमान है। 'बृहस्पति–आगम' में तो हिन्दुस्थान की सीमा निर्धारित करते हुए इसे भौगोलिक प्रत्याहारज शब्द स्वीकार किया गया है। यथा–

हिमालयं समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम्।
तं देवनिर्मितं देशं 'हिन्दुस्थानं' प्रचक्षते।।

अर्थात् हिमालय पर्वतके 'हि' शब्दोपलक्षित परले किनारे से आरम्भ करके इन्दु सरोवर–कुमारी अन्तरीपके 'न्दु'–शब्दोपलक्षित अन्तिम प्रदेशकी समाप्तिपर्यन्त देवनिर्मित विस्तृत स्थलका नाम 'हिन्दुस्थान' है। वेद में निरुक्त के नियमानुसार सकार हकार रूप में भी उच्चरित होता है – जैसे 'सरित', 'सरस्वती', 'सिन्धु' आदि शब्द 'हरित्', 'हरस्वती', 'हिन्धु' भी उच्चरित होते हैं। 'केसरी' का 'केहरी' तथा भारतीय 'श्री' शब्द का आंगल 'सर' और जर्मनी 'हर' भी इसी कोटि के शब्द हैं।

ओंकारमूलमन्त्राढ्यः पुनर्जन्मदृढाशयः।
गोभक्तो भारतगुरुर्हिन्दुहिंसनदूषकः।।

–माधवदिग्विजय

अर्थात् (1) ओंकारको मूलमन्त्र माननेवाला, (2) पुनर्जन्मविश्वासी, (3) गोभक्त, (4) जिसका प्रवर्तक भारतीय हो और (5) हिंसाको निन्द्य माननेवाला 'हिन्दू' कहा जाता है।"[3]

लोकमान्य तिलक हिन्दू के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि –

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु नियमानामनेकता।
उपास्यानामनियमो हिन्दुधर्मस्य लक्षणम्।।

अर्थात् 'वेदोंमें प्रामाण्य बुद्धि रखनेवाला, नानाविध नियमों का पालक, अनेक प्रकार से ईश्वरकी उपासना करने वाला हिन्दू कहाता है।'

प्रभाकर श्रीधर रोड़े ने 'वृद्धस्मृति' के नाम से हिन्दू का एक सुन्दर लक्षण उद्धृत किया है। यथा–

हिंसया द्रूयते यश्च सदाचरणतत्परः।
वेदगोप्रतिमासेवी स हिन्दुमुखशब्दभाक्।।[4]

अर्थात् 'हिंसा से दुःखित होने वाला एवं ब्राह्मण–सदाचरण में तत्पर; क्षत्रिय–सदा–च–रण–तत्पर सदैव रण के लिये उद्यत; वैश्य सदा–चरण तत्पर–सदैव = गमन–यात्रा में संलग्न, शूद्र–सदा–चरण–तत्पर सदैव द्विजाति की चरणसेवा में रत। वेद–गो–प्रतिमासेवी–ब्राह्मण–वेदवाणी के मूर्तिमान् शास्त्रों का अनन्य सेवक, क्षत्रिय–वेदों, भूमि और देवप्रतिमाओं का विश्वासी; वैश्य–वेद, गो–जाति और देवसत्ता का सेवक; शूद्र–वेद और गौ जिस विराट् पुरुष की प्रतिमा है, तदंगभूत वर्णत्रय का सेवक अर्थात्– वर्णाश्रम–मर्यादानुकूल आचरण करनेवाला पुरुष 'हिन्दू' है।

हिन्दू संस्कृति सर्वाधिक व्यापक एवं समृद्ध संस्कृति है। यह वह सांस्कृतिक धारा है जिसे अनेक उप धाराओं ने पुष्ट एवं संपन्न किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति एक ऊँची एवं महत्त्वपूर्ण संस्कृति थी, जिसका स्थान विश्व इतिहास की चार–छह उन्नत एवं महत्त्वपूर्ण संस्कृतियों में है। हम मानते हैं, और हमारा अनुमान है कि विश्व के बहुत से समझदार इतिहासवेत्ता तथा मनीषी इस मान्यता में हमारे साथ हैं, कि प्राचीन आर्य अथवा हिन्दू

जाति एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न जाति थी, जिसने उच्च संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों– साहित्य, दर्शन, व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित आदि में विशेष उल्लेख योग्य प्रगति की।

हिन्दू संस्कृति के सामाजिक तत्त्व

हिन्दू संस्कृति के महत्त्वपूर्ण सामाजिक तत्त्वों में वर्णव्यवस्था, आश्रमों का वर्गीकरण, पंचमहायज्ञ, षोडष संस्कार, विवाह, पुरुषार्थ चतुष्ट्य आदि कुछ प्रधान तत्त्व हैं।

वर्ण और आश्रम

ऋग्वेद में दो वर्णों, आर्य तथा दास का उल्लेख मिलता है जहा इन दोनों के भेद को स्पष्ट किया गया है।[5] शतपथ में इसके विपरीत समाज के चतुर्दिक वर्ण–विभाजन को अभिव्यक्त करता है–

"चत्वारो वै वर्णाः, ब्राह्मणो, राजन्यो, वैश्यः, शूद्रः।"[6]

प्रकृति के नैसर्गिक गुणों के अनुसार मानव समाज में चार विभाग करके, उनके कल्याण के लिए, उनकी रुचि, प्रकृति, योग्यता और अधिकार के अनुसार परमात्मा ने चारों वर्ण और आश्रमों के लिए धर्म एवं जीविकोपाजन के मार्ग और प्रकार भिन्न–भिन्न तरह के बनाए हैं। श्रीमद्भागवत गीता में वर्णों को ईश्वरकृत बताया गया है–

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।"[7]

चार वर्ण इस प्रकार हैं–

1. ब्राह्मण
2. क्षत्रिय
3. वैश्य
4. शूद्र

उसी ईश्वर–निर्मित व्यवस्था को 'वर्णा–व्यवस्था' कहते हैं। तदनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं वर्णेतर जाति के भिन्न–भिन्न तरह के लोगों के कल्याण के लिए उनकी योग्यता के आधार पर धर्म तथा जीविका के उपार्जन के लिए जो–जो शास्त्रीय नियम बने हैं, उन्हीं का नाम है– 'वर्णाश्रम धर्म।' अर्थात् वर्णधर्म और आश्रम–धर्म।

श्रीमद्भागवतमहापुराण के अनुसार विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। उनकी पहचान उनके स्वभावानुसार और आचरण से होती है।

"विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः।।[8]

चूँकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानवता के विकास के लिए, अर्थात् अपने जीवन को विशुद्ध और सुखमय बनाने के लिए धर्म और जीविका के उपार्जन की अनिवार्य आवश्यकता है। परन्तु त्रिगुणात्मक जगत् में सभी मनुष्यों के लिए, एक ही तरह की, एक प्रकार को, व्यवस्था से धर्मोपार्जन तथा जीविकोपार्जन करना संभव नहीं है। इसीलिए प्रकृति के नैसर्गिक गुणों के अनुसार मानव समाज में चार विभाग करके, उनके कल्याण के लिए, उनकी रुचि, प्रकृति, योग्यता और अधिकार के अनुसार परमात्मा ने चारों वर्ण और आश्रमों के लिए धर्म एवं जीविकोपाजन के मार्ग और प्रकार भिन्न–भिन्न तरह के बनाए हैं।

श्रीमद्भागवतमहापुराण विराट पुरुष से आश्रमों की उत्पत्ति बताता है। ये चार आश्रम हैं–

1. ब्रह्मचर्य आश्रम
2. गृहस्थ आश्रम
3. वानप्रस्थ आश्रम
4. सन्यास आश्रम

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम।
वक्षःस्थानाद्‌व्र वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः।।"[9]

अर्थात् विराट् पुरुष भी मैं ही हूँ; इसलिये मेरे ही ऊरु स्थल से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम, वक्षःस्थल से वानप्रस्थाश्रम और मस्तक से संन्यासाश्रम की उत्पत्ति हुई है।

हिन्दू संस्कार

'संस्कार' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग में 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर होती है। इसका उद्देश्य व्यक्ति में अभीष्ट गुणों को जन्म देना भी था। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में इसका बहुत महत्त्व रहा है।

"तन्त्रवार्तिक के अनुसार "योग्यता चोदधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते", अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं। यह योग्यता दो प्रकार की होती है; पाप मोचन से उत्पन्न योग्यता तथा नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता। मनुस्मृति[10] संस्कारों के उद्देश्य को बताते हुए कहती है कि, "द्विजातियों में माता–पिता के वीयं एवं गर्भाशय के दोषों को गर्भाधान–समय के होम तथा जातकर्म (जन्म के समय के संस्कार) से, चौल (मुण्डन संस्कार) से तथा मूंज संस्कार की मेखला पहनने (उपनयन) से दूर किया जाता है। वेदाध्ययन, व्रत, होम, विद्य व्रत, पूजा, सन्तानोत्पत्ति, पंचमहायज्ञों तथा वैदिक यज्ञों से मानवशरीर ब्रह्म–प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है।"[11]

स्मृतिचन्द्रिका द्वारा जातुकर्ण में उद्‌धृत षोडष संस्कार इस प्रकार हैं–

"आधान–पुंस–सीमन्त–जात–नामान्न चौलकाः
मौ'जी वृतानि गोदान–समावर्त–विवाहकाः।
अन्त्यं चौतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते षोडशैव तु।।"

1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. अन्नप्राशन, 7. चूडाकरण, 8. उपनयन, 9. वेदारम्भ, 10. ब्रह्मव्रत 11. वेदव्रत, 12 गोदान, 13. समावर्तन 14. विवाह, 15. ब्राह्मव्रत और 16. अन्त्यकर्म, ये षोडश संस्कार हैं।

"द्विजातियों में गर्भाधान से लेकर उपनयन तक के संस्कार अनिवार्य माने गये हैं तथा स्नान एवं विवाह नामक संस्कार अनिवार्य नहीं है, क्योंकि एक व्यक्ति छात्र–जीवन के उपरान्त संन्यासी भी हो सकता है (जाबालोपनिषद्)। संस्कारप्रकाश ने बलीब बच्चों के लिए संस्कारों की आवश्यकता नहीं मानी है।"[12]

चतुवर्ग अथवा पुरुषार्थ

मनुष्य जीवन के तीन अर्थ अर्थात् अभीष्ट फल और एक परम अर्थ यानी सर्वोच्च फल बतलाये गये हैं। इनमें भी परम अर्थ के लाभ के लिए ही इतर तीन अर्थो की आवश्यकता बतलायी गयी है। यह परम अर्थ ही चतुर्थ– पुरुषार्थ (मोक्ष) है। धर्म, अर्थ और काम– ये तीन उसके साधन हैं। इन्हीं का नाम 'त्रिवर्ग' है। इस त्रिवर्गके साथ मोक्ष को जोड़ देने से यही चतुर्वर्ग कहलाता है। यही मनुष्यों के चार पुरुषार्थ हैं। इनका यथोचित सम्पादन

करना ही मानव जातिका मुख्य उद्देश्य माना गया है। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमारे प्राचीन ऋषि महर्षि, देवर्षि और राजर्षियों ने धर्म–शास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और राजशास्त्रों की रचना प्राचीन कालमें ही समय–समय पर की है। व्यक्तित्व की अच्छाइयों तथा बुराइयों का निरूपण किन्हीं मूल्यों की अपेक्षा से ही किया जा सकता है। व्यक्तित्व की विशेषताएँ या तो स्वयं में मूल्यवान् होती हैं अथवा जीवन–मूल्यों के उत्पादन एवं संरक्षण का साधन। इसलिए किसी संस्कृति के अध्ययन में यह प्रश्न उठता है कि उसके जीवन–मूल्य क्या हैं? हमने देखा कि वैदिक काल के आर्य ऐश्वर्य तथा सुखपूर्ण ऐहिक जीवन को महत्त्व देते थे; उपनिषद् काल में जीवन मूल्यों की इस धारणा के विरुद्ध विद्रोह हुआ, और मोक्ष या अमृतत्व नाम के नये आदर्श की प्रतिष्ठा हुई। संस्कृत के ग्रंथों में मूल्य (Value) शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ है, वहां 'पुरुषार्थ' शब्द का प्रचलन रहा। रामायण–महाभारत के समय तक हमारे देश में चार पुरुषार्थों की धारणा सुप्रतिष्ठित हुई पायी जाती है। ये चार पुरुषार्थ हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्म एक नियामक तत्त्व है, जिसके दायरे में रहते हुए अर्थ तथा काम का संपादन होना चाहिए। महाभारत के अन्त में एक प्रसिद्ध उक्ति है–

ऊर्ध्वबाहुविरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते।।

अर्थात् 'मैं बाँह उठाकर उच्च स्वर में कह रहा हूँ, किन्तु कोई सुनता नहीं, धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, उस धर्म का सेवन क्यों नहीं करते।'

अर्थ और काम मनुष्य की जीवनेच्छा तथा जीवन–संभोग के प्रतीक हैं; संसार के सारे संघर्ष इन्हीं दो चीजों के लिए होते हैं। रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्यों का प्रधान विषय संघर्ष है। महाभारत का संघर्ष मुख्यतः राज्य के लिए हुआ। पाण्डव लोग जिस राज्य को अपना पैतृक अधिकार समझते थे उसे दुर्योधन हड़प लेना चाहता था। स्थूल रूप में रामायण में वर्णित संघर्ष स्त्री के लिए हुआ। उक्त महाकाव्यों में एक और भी बड़ा अन्तर है। महाभारत के युधिष्ठिर धर्मात्मा अवश्य हैं, किन्तु वे राज्य की लक्ष्मी के प्रति विमुख या उदासीन नहीं हैं। पाण्डव और कौरव दोनों ही राज्य को महत्वपूर्ण समझते हैं और उसके लिए लड़ते हैं।

पंचमहायज्ञ

हिन्दू संस्कृति में मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति है। इन चारों की प्राप्ति तभी संभव है, जब वैदिक विधान से पंच महायज्ञों को नित्य किया जाये। महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को पंचमहायज्ञों के विषय में बताते हुए कहते हैं– "हे युधिष्ठिर! जिनके अनुष्ठान से गृहस्थ पुरुषों को ब्रह्मलोक की प्रापति होती है, उन पंचमहायज्ञों का वर्णन करता हूँ, सुनो। पाण्डुनन्दन! ऋभुयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ– ये पंच यज्ञ कहलाते हैं। इनमें 'ऋभुयज्ञ' तर्पण को कहते हैं, 'ब्रह्मयज्ञ' स्वाध्याय का नाम है, समस्त प्राणियों के लिये अन्न की बलि देना 'भूतयज्ञ' है, अतिथियों की पूजा को 'मनुष्ययज्ञ' कहते हैं और पितरों के उद्देश्य से जो श्राद्ध आदि कर्म किये जाते हैं, उनकी 'पितृयज्ञ' संज्ञा है। हुत, अहुत, प्रहुत, प्राशित और बलिदान– ये पाकयज्ञ कहलाते हैं।[13]

हिन्दू धर्म में पंच महायज्ञ की बहुत महत्ता बतायी गयी है। धर्मशास्त्रों ने भी हर गृहस्थ को प्रतिदिन पंच महायज्ञ करने के लिए कहा है। नियमित रूप से इन पंच यज्ञों को

करने से सुख–समृद्धि व जीवन में प्रसन्नता बनी रहती है। इन महायज्ञों के करने से ही मनुष्य का जीवन, परिवार, समाज शुद्ध, सदाचारी और सुखी रहता है। मनुस्मृति, में निम्न मंत्र दिया गया है–

"अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पित्र यज्ञस्तु तर्पणं।
होमोदैवो बलिर्भौतो न्रयज्ञो अतिथि पूजनं।।"[14]

मानव जीवन के लिए जो पंच महायज्ञ महत्त्वपूर्ण माने गये हैं, वे निम्नलिखित हैं–

1. ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)
2. देवयज्ञ (होम)
3. पितृयज्ञ (पिंडक्रिया)
4. भूतयज्ञ (बलि वैश्वेदेव)
5. अतिथियज्ञ

हिन्दू धर्म एवं संस्कृति इतनी विस्तृत है कि चन्द शब्दों के सीमित लेख में उन सभी का विवेचन कर पाना गागर में सागर भरने का तुच्छ प्रयास प्रतीत होगा। इस लेख के माध्यम से हिन्दू संस्कृति के कतिपय महत्त्वपूर्ण सामाजिक तत्वों के विवेचन का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. दूबे, यू. सी., श्री अरविन्द का संस्कृति दर्शन, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1993, पृ.– 10
2. गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, (तृतीय संस्करण), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1997, पृ.– 214
3. माधवाचार्यजी शास्त्री, हिन्दू कौन?, कल्याण (हिन्दू–संस्कृति–अंक), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ.– 94–95
4. माधवाचार्यजी शास्त्री, हिन्दू कौन?, कल्याण (हिन्दू–संस्कृति–अंक), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ.– 96
5. ऋग्वेद, 1/104/2
6. शतपथ ब्राह्मण, 5/5/4/9; 6/4/4/13
7. श्रीमद्भागवत गीता – 4/13
8. श्रीमद्भागवतपुराण – 11/17/13
9. श्रीमद्भागवतपुराण – 11/17/14
10. 2/27–28
11. पी वी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ.– 177
12. पी वी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ.– 180
13. महाभारत आश्वमेधिक पर्व अध्याय 92 वैष्णव धर्म पर्व भाग–27
14. मनुस्मृति, 3–70

Asian Journal of Advance Studies

International Multidisciplinary Refereed Research Journal for Higher Education

Chief Patron

Prof. T. V. Kattimani

(Vice Chancellor)

Indira Gandhi National Tribal University

Amarkantak (A Central University)

Patron

Bhikkhu Chandima

Chairman

Antarrashtriya Buddh ShodhSansthan

Lucknow-U.P.

Editor in Chief

Dr. Alok Kashyap

MGKVP, Varanasi

Email: jhc.bhu@gmail.com

Contact No. : 09473655180

We have the pleasure to inform you that *Asian Journal of Advance Studies* International Refereed Research Journal is going to publish a research Journal (with ISSN Number) will be a blind peer reviewed anomaly publication.

Type of Articles:

It invites empirical research papers, theoretical papers, review articles, methodological and application based papers from the field of psychology, anthropology, criminology, women studies, humanities, management, education, Law, sociology, human rights, social welfare and community development. It would encourage growth oriented positive research articles which would contribute to policy development and community building.

Objectives:

The journal aims to encourage originality of work, information and best practices, promote international dialogue, collaboration and facilitate equitable dissemination of high quality research. It will give alternative perspectives on human studies, psychology and developmental issues. It will focus on new areas of researches and critical issues in various disciplines associated with human behaviour.

Specific Note for the Authors:

All manuscripts submitted to **AJAS** should be the original work of the author(s) not submitted or published elsewhere.

All submissions after pre-screening will follow a double blind peer review process.

Specifications of the paper:

The paper should be typed in English MS word format in Times New Roman and Hindi-Kruti dev 010 font size 12 and double line spacing. The Paper should include an abstract of 150 words and 5 to 7 keywords. Maximum size of the paper should be 5000 words including tables and references.

Manuscript Submission:

Authors to submit a soft copy of their manuscripts to the Editor *Asian Journal of Advance Studies* in a word soft copy. The covering note in the e-mail must specify the name(s) of the author(s), concise and informative title the affiliation(s) and address(es) of the author(s) the e-mail address, telephone and fax numbers of the corresponding author(s).

Disclaimer: इस शोध जर्नल में प्रकाशित शोध–पत्र लेखकों के अपने विचार हैं। प्रकाशक तथा सम्पादक मंडल उनके विचारों से सहमत हो यह आवश्यक नहीं है। किसी भी कानूनी विवाद का क्षेत्राधिकार वाराणसी न्यायालय होगा।

Published By:

Skylark Publication

Varanasi - 221307

www.skylarkpublication.in

Email: jhc.bhu@gmail.com

Mob. 9473655180

ISSN 2395-4965